17 अगस्त 2018, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 JaipurCity / 224 / 2018-20

जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के
व्याख्यान प्रतिदिन अब आधे घंटे
जिनवाणी चैनल पर
जिनवाणी JINVANI प्रतिदिन
सुख, शान्ति, समृद्धि
प्रातः 6.30 से 7.00 बजे तक

वर्ष : 41, अंक : 10 सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** आजीवन शुल्क : 251 रुपये
अगस्त (द्वितीय), 2018 (वीर नि. संवत्-2544) सह-सम्पादक : **डॉ. संजीवकुमार गोधा व पण्डित परमात्मप्रकाश भारिल्ल** वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन में -

41वाँ आध्यात्मिक शिक्षण शिविर प्रारंभ

जयपुर (राज.) : यहाँ ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन में डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के सान्निध्य में पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट, जयपुर द्वारा श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय के दिनांक 12 अगस्त से 21 अगस्त 2018 तक होने वाले 41वें आध्यात्मिक शिक्षण शिविर का उद्घाटन समारोह संपन्न हुआ।

शिक्षण शिविर का उद्घाटन श्री ध्याता बजाज सुपुत्र श्री प्रेमचंदजी बजाज परिवार कोटा के करकमलों से हुआ। इस अवसर पर डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल व पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल के सान्निध्य में आयोजित सभा की अध्यक्षता श्री संजयजी दीवान, सूरत ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्री महेन्द्रकुमारजी गंगवाल, जयपुर उपस्थित थे। अन्य अतिथियों में श्री कान्तिभाई मोटाणी मुम्बई, श्री नितिनभाई शाह, श्री विपुलजी मोटाणी मुम्बई, श्री अशोकजी जैन 'सुभाष ट्रांसपोर्ट' भोपाल, श्री अनूपजी नजा, श्री सुरेशजी वकील ललितपुर, श्री सुरेशचंदजी शिवपुरी, श्री राहुलजी गंगवाल, श्री विनयजी पापड़ीवाल जयपुर उपस्थित थे। विद्वत्गणों के अन्तर्गत डॉ. भारिल्ल के साथ-साथ पण्डित रतनचंदजी भारिल्ल, ब्र.यशपालजी जैन, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री देवलाली, डॉ. शांतिकुमारजी पाटील, डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर, डॉ. नरेन्द्रजी शास्त्री, डॉ. दीपकजी जैन 'वैद्य', पण्डित धर्मेन्द्रजी शास्त्री कोटा, डॉ. प्रवीणजी शास्त्री बांसवाड़ा, पण्डित कमलचंदजी पिड़ावा, पण्डित सुरेशचंदजी टीकमगढ आदि अनेक विद्वत्गण मंचासीन थे।

मंचासीन समस्त अतिथियों का सम्मान डॉ. शांतिकुमारजी पाटील एवं पण्डित पीयूषजी शास्त्री जयपुर ने तिलक लगाकर एवं माल्यार्पणकर किया।

तत्त्वप्रचार में अभूतपूर्व योगदान हेतु श्री संजयजी दीवान सूरत, श्री महेन्द्रजी-राहुलजी गंगवाल जयपुर एवं श्री प्रेमचंदजी बजाज का पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट द्वारा विशेष सम्मान किया गया, जिसमें ट्रस्ट के अध्यक्ष श्री सुशीलजी गोदिका द्वारा तिलक लगाकर साफा पहनाया गया एवं ट्रस्ट के प्रकाशन मंत्री ब्र.यशपालजी द्वारा शॉल ओढायी गयी।

उद्घाटन सभा के पूर्व शिविर मण्डप का उद्घाटन श्री तन्मय बजाज सुपुत्र श्री प्रेमचंदजी बजाज परिवार कोटा ने, मंच का उद्घाटन श्री सूरजमलजी हूमड़ परिवार रामगंजमण्डी ने एवं ध्वजारोहण श्री निहालचंदजी घेवरचंदजी जैन जयपुर की ओर से श्री विनयजी जैन, पूर्वी जैन व दिव्यम् जैन ने किया। इसके अतिरिक्त पण्डितप्रवर टोडरमलजी के चित्र का अनावरण श्री महेन्द्रकुमार-राहुलजी गंगवाल परिवार जयपुर व श्री संजयजी दीवान सूरत ने एवं गुरुदेवश्री के चित्र का अनावरण श्री कांतिभाई मोटाणी, श्री नितिनभाई शाह व श्री विपुलभाई मोटाणी मुम्बई द्वारा किया गया।

शिविर के मुख्य आमंत्रणकर्ता श्री प्रेमचंदजी बजाज एवं श्रीमती सुनीता बजाज परिवार कोटा एवं आमंत्रणकर्ता श्री महेन्द्रकुमारजी राहुलजी गंगवाल परिवार जयपुर हैं। शिविर में आयोजित हो रहे श्री समयसार महामंडल विधान के आमंत्रणकर्ता श्री भरतभाई मेहता सूरत, पण्डित सिद्धार्थजी दोशी रतलाम, श्री शांतिलालजी चौधरी भीलवाड़ा, श्री निहालचंदजी घेवरचंदजी जैन जयपुर, श्री वीरेशजी कासलीवाल सूरत, श्रीमती लीला-प्रेमचंदजी जैन दौसा हैं।

इस अवसर पर श्री प्रेमचंदजी बजाज ने पूज्य गुरुदेवश्री के उपकार एवं गोदिका परिवार के योगदान का स्मरण करते हुए डॉ. भारिल्लजी के मार्गदर्शन में टोडरमल स्मारक द्वारा देश-विदेश में किये जा रहे तत्त्वज्ञान के प्रचार-प्रसार को सराहा। श्री सूरजमलजी हूमड ने भी स्मारक ट्रस्ट एवं भारिल्लजी को धन्यवाद देते हुए सभी को शिविर में तत्त्वज्ञान का भरपूर लाभ लेने की प्रेरणा दी।

अध्यक्षीय भाषण में श्री संजयजी दीवान ने टोडरमल स्मारक से अपने सम्बन्धों का उल्लेख करते हुए बचपन में ही प्राप्त तत्त्वज्ञान के संस्कार हेतु स्मारक व स्मारक के विद्वानों के योगदान को सराहा।

शिविर के समग्र कार्यक्रम की रूपरेखा डॉ. शांतिकुमारजी पाटील ने प्रस्तुत की एवं पीयूषजी शास्त्री ने आभार प्रदर्शन किया।

कार्यक्रम का संचालन श्री परमात्मप्रकाशजी भारिल्ल ने किया।

तत्पश्चात् मुमुक्षु आश्रम ट्रस्ट कोटा द्वारा प्रकाशित पण्डित दौलतरामजी कासलीवाल द्वारा रचित 'क्रियाकोश' नामक ग्रंथ का विमोचन डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के करकमलों द्वारा हुआ।

अन्त में डॉ. भारिल्ल द्वारा 'आत्मानुभूति का उपाय' विषय पर मार्मिक प्रवचन हुआ। ●

सम्पादकीय –

ऐसे क्या पाप किये?

15

– पण्डित रतनचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे...)

सर्वज्ञता, क्रमबद्धपर्याय और पुरुषार्थ

'सर्वं जानातीति सर्वज्ञः' इस व्युत्पत्ति के अनुसार सर्वज्ञ शब्द का अर्थ है सबको जानने वाला। ''सर्वज्ञ शब्द में जो सर्व शब्द है उसका तात्पर्य त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती समस्त द्रव्यों और उनकी समस्त पर्यायों से है। जो त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती समस्त द्रव्यों और उनकी समस्त पर्यायों को युगपत हस्तामलकवत् प्रत्यक्ष जानता है वह सर्वज्ञ है।'' इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए षट्खण्डागम में निम्नांकित सूत्र है-

सईं भयवं उप्पण्णणाणदरिसी...सव्वलोए सव्वजीवे सव्वभावे सम्मं समं जाणदि पस्सदि विहरदित्ति। (प्रकृति अनुयोग द्वारा सूत्र ५२)

इसी तथ्य को स्पष्ट करते हुए आचार्य कुन्दकुन्द प्रवचनसार (गाथा ४७) में लिखते हैं – ''जो ज्ञान युगपत सब आत्मप्रदेशों से तात्कालिक और अतात्कालिक विचित्र और विषम सब पदार्थों को जानता है। उस ज्ञान को क्षायिक ज्ञान कहते हैं।

प्रश्न :– जीव नियत स्थान और नियत काल में स्थित होकर भी त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थों को कैसे जानता है? इस प्रश्न के उत्तर में द्रव्य स्वरूप का निर्देश करते हुए आप्तमीमांसा में लिखा है –

''नैगमादि नयों और उपनयों के विषयभूत भूत, भविष्यत् और वर्तमान कालसम्बन्धी समस्त पर्यायों के तादात्म्य सम्बन्धरूप समुच्चय का नाम द्रव्य है। वह द्रव्य एक होकर भी अनेक हैं।''[१]

इसका आशय यह है कि प्रत्येक द्रव्य वर्तमान पर्यायमात्र न होकर तीनों कालों की पर्यायों का पिण्ड है, इसलिए एक द्रव्य के ग्रहण होने पर तीनों कालों की पर्यायों का ग्रहण हो जाता है तथा ज्ञान का स्वभाव जानना है, इसलिए वह विवक्षित द्रव्य को जानता हुआ उसकी त्रिकालवर्ती समस्त पर्यायों को जान सकता है।

जैसे दीपक स्वक्षेत्र में स्थित होकर भी क्षेत्रान्तर में स्थित पदार्थों को प्रकाशित करता है उसी प्रकार ज्ञान भी भिन्न क्षेत्र में स्थित पदार्थों को जानता है।

अमृतचन्द्र आचार्य देव ने पुरुषार्थसिद्ध्युपाय में मंगलाचरण करते हुए लिखा है कि ''वह परम ज्योति (केवलज्ञान) जयवन्त होओ, जिसमें दर्पणतल के समान समस्त पदार्थमालिका प्रतिभासित होती है। जैसे क्षेत्रान्तर में स्थित घटादि पदार्थ दर्पण में प्रतिबिम्बित होते हैं वैसे ही क्षेत्रान्तर में स्थित घटादि पदार्थ ज्ञान के विषय होते हैं। अतएव जो ज्ञान क्रम और आवरण से रहित हो वह तीन लोक और तीन कालवर्ती समस्त पदार्थों को युगपत जानता है।

ज्ञान के दो प्रकार हैं – ज्ञानाकार और ज्ञेयाकार। प्रत्येक ज्ञान जो ज्ञेयाकार परिणमित होता है उसकी अपेक्षा को गौण कर ज्ञान को मात्र सामान्यरूप से देखने पर वह ज्ञानाकार प्रतीत होता है। ज्ञेयाकाररूप परिणमन की दृष्टि से देखने पर वह ज्ञेयाकार प्रतीत होता है। इससे सिद्ध होता है कि केवलज्ञान का जो प्रत्येक समय में परिणमन है वह तीन लोक और त्रिकालवर्ती समस्त ज्ञेयाकाररूप ही होता है। केवलज्ञान तीन लोक और त्रिकालवर्ती समस्त पदार्थों को युगपत जानता है। इससे यह ज्ञात हो जाता है कि जिसने पूरी तरह से अपने आत्मा को जान लिया उसने सबको जान लिया। उसी को दूसरे शब्दों में यों भी कहा जा सकता है कि जिसने सबको पूरी तरह से जान लिया उसने अपने आत्मा को पूरी तरह से जान लिया।

जानना ज्ञान की परिणति है और वह परिणति ज्ञेयाकाररूप होती है, इसलिए अपने आत्मा के जानने में सबका जानना या सबके जानने में अपने आत्मा का जानना आ ही जाता है। इससे यह भी ज्ञात हो जाता है कि सर्वज्ञ जानता तो सबको है पर वह तन्मय होकर नहीं जानता। उदाहरणार्थ एक ऐसे दर्पण को लीजिए जिसमें अग्नि की ज्वाला प्रतिबिम्बित हो रही है। आप देखेंगे कि ज्वाला उष्ण है, परन्तु दर्पणगत प्रतिबिम्ब उष्ण नहीं होता। ठीक यही स्वभाव ज्ञान का है। ज्ञान में ज्ञेय प्रतिभासित तो होते हैं, पर ज्ञेयों से तन्मय न होने के कारण ज्ञान मात्र उन्हें जानता है, उनसे तन्मय नहीं होता।

स्वामी समन्तभद्र ने केवलज्ञान की इस महिमा को जानकर सर्वज्ञता की सिद्धि करते हुए आप्तमीमांसा में लिखा है–

सूक्ष्मान्तरितदूरार्थाः प्रत्यक्षाः कस्यचिद्यथा।
अनुमेयत्वतोऽग्न्यादिरिति सर्वज्ञसंस्थितिः ।।५।।

सूक्ष्म (परमाणु आदि) अन्तरित (राम, रावणादि) और दूरवर्ती (सुमेरु आदि) पदार्थ किसी पुरुष के प्रत्यक्ष अवश्य हैं, क्योंकि वे अनुमान के विषय हैं। जो अनुमेय होते हैं वे किसी के प्रत्यक्ष अवश्य होते हैं। जैसे पर्वत में अग्नि को हम अनुमान से जानते हैं, किन्तु वह अग्नि अनुमान के विषय अर्थात् किसी के प्रत्यक्ष भी है। इससे सिद्ध होता है कि जो पदार्थ किसी के अनुमान के विषय होते हैं वे किसी के प्रत्यक्ष अवश्य होते हैं।

चूँकि सूक्ष्म, अन्तरित और दूरवर्ती पदार्थ अनुमेय हैं। अतः वे किसी के प्रत्यक्ष भी है और जिसके वे प्रत्यक्ष हैं वही सर्वज्ञ है।

इस प्रकार उक्त अनुमान प्रमाण के बल से सर्वज्ञ की सिद्धि हो जाने पर भी यह विचारणीय हो जाता है कि सर्वज्ञ कौन हो सकता है? इसका समाधान करते हुए स्वामी समन्तभद्र ने बतलाया है कि जिसके ज्ञानावरणादि कर्म दूर हो गये हैं वह निर्दोष और निरावरण होने से सर्वज्ञ है, क्योंकि प्रत्येक जीव केवलज्ञानस्वभाव है, फिर भी संसारी जीव के अनादि काल से अज्ञानादि दोष और ज्ञानावरणादि कर्मों का सद्भाव पाया जाता है; किन्तु जब अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकार के मलों का क्षय हो जाता है तब त्रिकाल और त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थों को जानने में समर्थ केवलज्ञान प्रगट हो जाता है।

अब प्रश्न यह है कि क्या किसी आत्मा में सम्पूर्ण दोषों और आवरणों की सर्वथा हानि सम्भव है? इसके उत्तर में आचार्य समन्तभद्र आत्म मीमांसा के चतुर्थ श्लोक में कहते हैं कि किसी आत्मा में दोष (अज्ञान, राग, द्वेष और मोह) तथा आवरण (ज्ञानावरणादि कर्म) की पूर्ण हानि सम्भव है, क्योंकि दोष और आवरण की हानि में 'हीनाधिकयन्द्री' (अतिशय) देखी जाती है। अतः कोई ऐसा पुरुष भी होना चाहिए जिसमें दोष और आवरण की सम्पूर्ण हानि हो। जिसप्रकार सोने को अग्नि में तपाने पर उसमें विद्यमान अशुद्धता आदि दोष और मल की हानि होकर वह पूर्ण शुद्ध हो जाता है उसीप्रकार आत्मध्यानरूपी अग्नि के द्वारा द्रव्यकर्म और भावकर्मरूपी मल के नष्ट हो जाने पर आत्मा शुद्ध होकर उसके अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य आदि स्वाभाविक गुण पूर्णरूप से प्रगट हो जाते हैं।

आत्मा में दोष और आवरण की पूर्ण हानि और सर्वज्ञता की सिद्धि होने पर यह प्रश्न होता है कि अमुक आत्मा में दोष आवरण की पूर्ण हानि हो गई यह कैसे समझा जाय? इसके उत्तर में आचार्य समन्तभद्र उसी आत्ममीमांसा के छठवें श्लोक में लिखते हैं कि ''जिसके उपदिष्ट वचनों में युक्ति और शास्त्र से बाधा न आवे, समझो वह निर्दोष है। तथा अमुक का वचन युक्ति और शास्त्र से अविरोधी है – यह प्रमाण की कसौटी पर कसने से जाना जा सकता है। स्पष्ट है कि भगवान् अरिहन्त परमेष्ठी के वचनों में युक्ति और शास्त्र से बाधा नहीं आती। इससे ज्ञात होता है कि वे निर्दोष हैं और जो पूर्ण निर्दोष होता है वह सर्वज्ञ होता ही है।

सर्वज्ञता जैनधर्म का प्राण है। आगम और अनुभव से तो उसकी सिद्धि होती ही है। आचार्य समन्तभद्र ने युक्ति से भी सर्वज्ञता को सिद्ध कर दिया है। साथ ही उनके परवर्ती अकलंक, विद्यानन्दि, प्रभाचन्द्र और अनन्तवीर्य आदि जितने भी दार्शनिक आचार्य हुए हैं उन्होंने भी दृढ़ता के साथ उसका समर्थन किया है।

सर्वज्ञ हैं और वह तीन लोक और त्रिकालीवर्ती समस्त ज्ञेयों को युगपत् जानता है यह उक्त कथन का सार है। वह वर्तमान और अतीत को पूरी तरह से जानता है और भविष्य को अनिश्चितरूप से जानता है ऐसा कथन करनेवालों ने वास्तव में सर्वज्ञ को ही स्वीकार नहीं किया। और जो सर्वज्ञ को स्वीकार नहीं करता वह अपने आत्मा के अस्तित्व को कैसे स्वीकार कर सकता है? नहीं कर सकता। अतः यदि हमें धर्म करना है तो सर्वज्ञ के स्वरूप और सत्ता को जानकर स्वीकार करना हमारी नियति है अन्यथा धर्म का प्रारंभ ही नहीं होगा। **(क्रमशः)**

एक मोक्षार्थी की पूर्व भूमिका (20)

आत्मा के प्रति अरुचि हमारा जघन्यतम अपराध है

– **परमात्मप्रकाश भारिल्ल** (कार्यकारी महामंत्री-टोडरमल स्मारक ट्रस्ट)

हम चर्चा कर चुके हैं कि यदि आत्मकल्याण करना है तो हमें परम्परा की लीक से हटकर, आगम के अभ्यास द्वारा, तर्क और युक्ति की कसौटी पर कसकर सच्चा मार्ग खोजना होगा।

जगत में विरले लोग ही ऐसे हैं जो सामाजिक और धार्मिक विषयों में लीक से हटकर सोचने और चलने का प्रयास करते हैं। इसके पीछे के कारणों में अपनी कुल परम्परा के व्यामोह के अतिरिक्त, इन विषयों में हमारी उदासीनता और साहस की कमी प्रमुख है।

मैं हमेशा ही कहा करता हूँ कि ''**हम जो करते आ रहे हैं वही करते रहेंगे तो जो जैसे बने हुए हैं, वही बने रहेंगे; यदि नया कुछ पाना है तो नया कुछ करना पड़ेगा।**''

अनादिकाल से हम सभी जीव संसार में हैं; क्योंकि हमारे क्रियाकलाप और गतिविधियाँ मात्र हमारा संसार बढाने वाले हैं। हमने ऐसा पुरुषार्थ ही नहीं किया कि हम संसार से मुक्त हो सकें। अब भी यदि हम वही सब कुछ करते रहेंगे जो अब तक करते आये हैं तो जैसा अब तक हमारा संसार फलफूल रहा है, वैसा ही आगे भी फलता-फूलता रहेगा।

हम अपने क्रियाकलापों से मात्र अपना संसार ही नहीं बढाते हैं, वरन अपने अनुगामियों को भी उनका संसार बढाने में निमित्त बनते हैं; इसप्रकार यह संसार की परम्परा बढती रहती है।

वे विरले लोग जो संसार के स्वरूप को भलीभांति जानकर और पहिचानकर उससे विमुख हुए हैं, मोक्ष के स्वरूप को सही अर्थों में समझकर मुमुक्षु हुए हैं एवं मोक्षमार्ग पर अग्रसर हैं, वे स्वयं तो अपना कल्याण करते ही हैं, अन्य भव्यजीवों के लिये भी मोक्ष का मार्ग प्रशस्त करते हैं।

अहम प्रश्न यह है कि **आखिर क्यों हम सभी ऐसा नहीं करते हैं? क्यों नहीं हम सच्चे मार्ग की खोज करके उस पर आगे बढते हैं, वह क्या है जो हमें ऐसा करने से रोकता है?**

जवाब सुनेंगे तो आप चौंक जायेंगे।

यह हमारा अपने आत्मा के प्रति, अपने आपके प्रति द्वेषभाव है, जो हमें स्वयं अपने बारे में, अपने हित के बारे में सोचने से रोकता है।

आप कहेंगे कि यह कैसे संभव है, भला कोई अपने आप से क्यों और कैसे द्वेष करेगा?

आचार्य कहते हैं ''**द्वेष अरोचक भाव**''।

अरुचि ही द्वेष है। हमारी स्वयं अपने आत्मा के प्रति, आत्मकल्याण के प्रति अरुचि हमारा आत्मा के प्रति अनन्त द्वेष ही है। यही अनन्तानुबंधी कषाय है, यही हमारा स्वयं अपने प्रति अनन्तानुबंधी क्रोध है।

दरअसल अरुचि, बेपरवाही, उपेक्षा – ये सब भाव द्वेषरूप ही हैं।

हम द्वेष की सही परिभाषा भी नहीं जानते हैं, हम सिर्फ हमारे अन्दर व्याप्त किसी के प्रति प्रकट क्रोध और उसका अहित करने सम्बन्धी सक्रियता को ही द्वेष मान बैठे हैं। हमने कभी यह सोचा तक नहीं कि **किसी के अस्तित्व को स्वीकार ही नहीं करना, उसके हित-अहित का विचार ही नहीं आना हमारी उसके प्रति घोर उपेक्षा है और यह भाव द्वेषरूप ही है।**

जीव के भाव दो प्रकार के होते हैं –

– शुद्धभाव

– विकारी भाव

वीतरागभाव शुद्ध भाव है और राग-द्वेष भाव विकारी भाव हैं।

जब तक हम वीतरागी नहीं होते हैा तब तक या तो हम किसी के प्रति रागभाव करेंगे या द्वेषभाव। किसी के प्रति अरुचि रागभाव तो हो नहीं सकती है, तो निश्चित ही यह द्वेषभाव ही है।

और तो और, राग और द्वेष भावों के बारे में भी हमारी समझ सही नहीं है। इस सम्बन्ध में मैं डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल का वह उदाहरण उद्धृत करना चाहूंगा जो वे अपने ''अहिंसा'' विषय पर व्याख्यान में दिया करते हैं।

वे कहते हैं कि दुनियां में कहा और माना जाता है कि बिल्ली और चूहे में जन्मजात बैर है; पर यह बात सच नहीं है, क्योंकि बिल्ली द्वेषवश चूहे को नहीं मारती है, रागवश मारती है। बिल्ली को अपने भोजन के रूप में चूहे बहुत पसंद हैं, इसलिये वह उन्हें मारकर खा जाती है। यदि द्वेष होता तो वह उसे मारकर फेंक देती, खाती नहीं।

वे कहते हैं कि जिसप्रकार हमें अपने भोजन से राग होता है द्वेष नहीं, उसी प्रकार बिल्ली को भी चूहे से राग है द्वेष नहीं।

किसी के प्रति उदासीनता किस प्रकार हमसे उसके प्रति आपराधिक व द्वेषपूर्ण कृत्य करवाती है, यह बात हम हमारे अनेकों व्यवहारों की समीक्षा करके भलीभांति समझ सकते हैं।

हमारे साथ हमारे घरों में और नगर में अनन्त जीवों का वास होता है। हमें उनसे कोई सम्बन्ध न होने से, उनमें हमारी कोई रुचि न होने (अरोचक भाव) से, हमारे दिन-प्रतिदिन के क्रियाकलाप निरंतर उनके अस्तित्व के लिये चुनौती उत्पन्न करते रहते हैं। हमारे उठने-बैठने, चलने-फिरने और अन्य कार्य करने में हमें इस बात का ख्याल ही नहीं आता है कि हमारे क्रिया-कलापों के कारण हमारे चारों ओर रहने वाले अनन्त जीवों का जीवन ही संकट में पड़ जाता है। इस सन्दर्भ में हम आलोचना पाठ में वर्णित हमारे दिन-प्रतिदिन के सभी क्रियाकलापों को याद कर सकते हैं, यथा -''झाडू ले जांगा बुहारी, चिंटियादिक

जीव बिदारी। जल छानि जीवानि कीनी ...''।

हमारे देश में बरसात के मौसम में प्राय: सड़कों पर पानी भर जाता है। जब हमारी कार तेजी से उस पानी भरी सड़क से गुजरती है तो सड़क के किनारे फुटपाथ पर पैदल चल रहे राहगीरों पर गंदा पानी और कीचड़ उछालकर उन्हें संकट में डाल देती है।

ऐसा क्यों होता है?

क्योंकि हमें उन राहगीरों का ख्याल ही नहीं है, उनसे कोई मतलब या सारोकार ही नहीं है, उनमें हमारी कोई दिलचस्पी ही नहीं है या उनमें हमारी अरुचि है। उनके प्रति हमारी यही अरुचि हमसे उनके प्रति ऐसे द्वेषपूर्ण कृत्य करवा डालती है। यदि हम उनके अस्तित्व का सम्मान करते, फुटपाथ पर पैदल चलने के उनके अधिकार को स्वीकार करते तो हम उनके प्रति सावधानी बरतते हुए उक्त व्यवहार कभी नहीं करते।

हमारे उक्त लापरवाही भरे व्यवहार से स्पष्ट है कि हम उनके अस्तित्व का सम्मान नहीं करते हैं, हमें उनका अस्तित्व स्वीकार ही नहीं है।

क्या यह छोटा अपराध है?

यह हमारा उनके प्रति जघन्यतम अपराध है।

अरे! **यह मात्र उनके अस्तित्व की अस्वीकृति ही नहीं है, यह वस्तुस्वरूप की अस्वीकृति है। ''वत्थु सहावो धम्मो'' अर्थात् वस्तु का स्वभाव धर्म है, अस्तित्व वस्तु का स्वभाव अर्थात् धर्म है और उनके अस्तित्व की अस्वीकृति – यह धर्म की अस्वीकृति है।**

जिसप्रकार जगत के अन्य जीवों के प्रति हमारी अरुचि (अरोचक भाव) हमारे व्यवहार द्वारा उनके प्रति घातक हिंसा को जन्म देती है, उसीप्रकार **आत्मा के प्रति, स्वयं अपने आपके प्रति हमारी अरुचि और उपेक्षा हमारे स्वयं के लिये घातक होती है, यह हमें संसार में परिभ्रमण करवाती है। अपने आपके प्रति यही अरुचि अनादिकाल से आज तक हमारी सबसे बड़ी समस्या है और इसी के परिणामस्वरूप हम अब तक संसार में परिभ्रमण कर रहे हैं और यही क्रम तब तक चलता रहेगा जब तक कि हम आत्महित के प्रति रुचिवंत नहीं होंगे, अपना (आत्मा का) स्वरूप नहीं समझेंगे, उसे स्वीकार नहीं करेंगे।**

आत्मा के प्रति रुचि या अरुचि दोनों ही कोई साधारण वस्तु नहीं है। जहाँ एक ओर अरोचक भाव द्वेष है, वहीं दूसरी ओर **''पर द्रव्यनतें भिन्न आपमें रुचि सम्यक्त्व भला है''।**

आत्मा के प्रति अरुचि हमारा जघन्यतम अपराध है और आत्मा की रुचि हमारी सर्वोत्तम निधि है।

पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के समस्त ऑडियो – वीडियो, प्रवचन साहित्य एवं अन्य अनेक जानकारियों के लिये अवश्य देखें– वेबसाईट – www.vitragvani.com
संपर्क सूत्र–श्री कुन्दकुन्द कहान पारमार्थिक ट्रस्ट, मुम्बई
Ph. : 022-26130820, 26104912, E-Mail - info@vitragvani.com
ये सभी प्रवचन सामग्री अब vitragvani एप पर भी उपलब्ध है।

श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धांत महाविद्यालय की –

साप्ताहिक गोष्ठी संपन्न

जयपुर (राज.) : यहाँ टोडरमल स्मारक भवन में टोडरमल महाविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा आयोजित गोष्ठियों के क्रम में दिनांक 5 अगस्त को '**सम्यग्ज्ञान**' विषय पर गोष्ठी आयोजित हुई, जिसकी अध्यक्षता पण्डित परेशजी शास्त्री जयपुर ने की।

श्रेष्ठ वक्ता के रूप में उपाध्याय वर्ग से संयम जैन दिल्ली (उपाध्याय वरिष्ठ) एवं शास्त्री वर्ग से सम्मेद खोत हुपरि (शास्त्री द्वितीय वर्ष) रहे।

गोष्ठी का मंगलाचरण चेतन जैन, गुढाचन्द्रजी (उपाध्याय कनिष्ठ) ने एवं संचालन शास्त्री तृतीय वर्ष के लक्षित जैन व जितेन्द्र जैन ने किया। आभार प्रदर्शन जिनकुमारजी शास्त्री ने एवं ग्रंथ भेंट जिनेन्द्रजी शास्त्री ने किया।

समयसार विधान सानन्द संपन्न

टीकमगढ (म.प्र.) : यहाँ ज्ञान मन्दिर में कुन्दकुन्द मुमुक्षु मण्डल ट्रस्ट के तत्त्वावधान में दिनांक 28 जुलाई से 2 अगस्त तक श्री समयसार मण्डल विधान संपन्न हुआ।

इस अवसर पर डॉ. संजीवकुमारजी गोधा जयपुर द्वारा प्रात: एवं सायंकाल ग्रंथाधिराज समयसार पर एवं दोपहर में नयचक्र के आधार से नयों के सामान्य स्वरूप एवं व्यवहार नय के प्रयोग करने की विधि पर प्रवचनों का लाभ मिला। रात्रि में प्रोजेक्टर स्क्रीन पर कर्मों का खेल और जैन भूगोल आदि विषयों पर आकर्षक सेमिनार रखे गये।

आयोजन में सौधर्म इन्द्र श्रीमती रजनी–राजकुमारजी बैशाखिया परिवार, ऐशान इन्द्र श्रीमती अंगूरी–शिखरचंदजी दलीपुर परिवार, सानतकुमार इन्द्र श्रीमती मेघा–अंकित वैद्य परिवार, माहेन्द्र इन्द्र श्रीमती करुणा–अरुण ठगन और यज्ञ नायक साधना–राजेन्द्र लोडुआ प्रकाश लोडुआ परिवार रहे।

विधि विधान के समस्त कार्य विधानाचार्य पण्डित विवेकजी शास्त्री इन्दौर ने पण्डित विकेशजी शास्त्री जयपुर के सहयोग से संपन्न कराये।

विधान का संयोजन कमलेशजी शास्त्री, आशीषजी शास्त्री, संजयजी जैन हल्ले, रोहितजी वैशाखिया आदि ने किया।

विशेष संगोष्ठी संपन्न

ऑनलाइन नियमसार संगोष्ठी में अष्टाह्निका पर्व के अवसर पर पहले आठ दिन सिद्धचक्र मंडल विधान पर डॉ. हुकमचंदजी भारिल्ल के सी.डी. प्रवचन के माध्यम से स्वाध्याय हुआ। तत्पश्चात् दिनांक 29 जुलाई से 1 अगस्त तक सिद्धचक्र विधान पर संगोष्ठी हुई।

इस अवसर पर डॉ. राकेशजी शास्त्री नागपुर और डॉ. अरविन्दजी भीलवाड़ा द्वारा यथासमय विशेष खुलासा व शंका–समाधान का लाभ प्राप्त होता रहा। गोष्ठी का संचालन कर रही डॉ. सुरभिजी खंडवा ने गोष्ठी में प्राप्त प्रश्नोत्तर As Received Basis पर संकलन करके सबको लाभ दिया।

– जे.पी. दोशी

राजुल का विलाप

(राजुल को स्वप्न में नेमीनाथ द्वारा सीख)

-डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

इस तरह विविध बातें करती,
राजुल अधीर हो जाती है।
अकुलाती है घबराती है,
उस्वांसे भरती जाती है।।
उसकी व्याकुलता देख स्वप्न में,
नेमिनाथ आ जाते हैं।
अत्यन्त शान्त धीरे-धीरे,
वे राजुल को समझाते हैं।। १८।।

राजुल इस तरह अधीर होना,
आतमहित का सन्मार्ग नहीं।
रोना-धोना व्याकुल होना,
है समझदार का काम नहीं।।
इन संयोगों का मेला-ठेला,
अध्रुव अनित्य क्षणभंगुर है।
क्या इसका भान नहीं तुमको,
फिर क्यों तुम इतनी व्याकुल हो।। १९।।

यह रागभाव भी इसी तरह,
अध्रुव है ध्रुव का धाम नहीं।
इस रागभाव का मर जाना,
यह कोई असंभव काम नहीं।।
जब मैं बरात लेकर आया,
तब रागी था अनुरागी था।
क्षण में अध्रुव अनुराग मरा,
अर आज वीतरागी हूँ मैं।। २०।।

मैंने कोइ धोखा नहीं दिया,
शादी की मैंने हाँ की थी।
सब बात एकदम पक्की थी,
मन से पूरी तैयारी थी।।
शादी करने का राग एकदम,
टूट गया अर छूट गया।
अब बिना राग के हे राजुल,
शादी कैसे हो सकती है।। २१।।

रागी से बैरागी होना,
यह तो कोई अपराध नहीं।
न धोखा है न छल प्रपंच,
इसमें है कोई पाप नहीं।।
शादी हो जाने पर होता,
तो क्या होता अनुमान नहीं।
कब क्या होगा कैसे होगा,
इसका है किसी को भान नहीं।। २२।।

सपने में ही राजुल बोली,
मैं भी अब दीक्षा धारूँगी।
नेमीश्वर ने जो किया वही,
मैं भी करके बतला दूँगी।।
उनके पदचिन्हों पर चलना,
अपना कर्त्तव्य समझती हूँ।
रे उनकी अनुगामिन होना,
अपना कर्त्तव्य समझती हूँ।। २३।।

नेमीश्वर बोले - हे राजुल!
यह तो सच्चा वैराग्य नहीं।
अनुगामिनी होना हे देवी!
यह तो कोई सौभाग्य नहीं।।
यह तो है मुझमें महामोह
जो मेरे सी बनना चाहो।
पतिदेव समझकर के अपना
अब मुझको अपनाना चाहो।।२४।।

मैं नहीं तुम्हारा कुछ भी हूँ
मैं एक दिगम्बर सन्यासी।
जो नहीं किसी का कुछ होता
उसका भी नहीं कोई साथी।।
मैं हूँ अपने में स्वयं पूर्ण
पर की मुझमें कुछ गंध नहीं।
मैं अरस अरूपी अस्पर्शी
पर से कुछ भी सम्बन्ध नहीं।। २५।।

तुम भी कुछ नहीं किसी की हो
तुम शुद्धातम हो अविनाशी।
तुम करो स्वयं में अपनापन
पाओ अपना पद अविनाशी।।
तुम अपने को ही अपनाओ
केवल अपना अभ्यास करो।
पर की आशा को छोड़ स्वयं
केवल अपना ही ध्यान धरो।। २६।।

सुपने में ही राजुल बोली–
मुझको अपनालो प्राणनाथ।
जो आप कहेंगे वह सब ही
अपना लूँगी मैं प्राणनाथ।।
समझाने के लिये सही पर
आप पधारे हैं प्रियवर।
अब अपनाने के लिये प्रभो!
हम हाथ जोड़ते हैं प्रियवर।। २७।।

हे नाथ! सुनो रे हम–तुम तो
पिछले नौ भव के साथी हैं।
अपना संबंध न इस भव का
हम तो भव–भव के साथी हैं।।
मैं क्या बोलूँ हे नाथ आप तो
सभी जानते हैं स्वामी।
हम एक आतमा दो शरीर
ऐसे जीवन संगाती हैं।। २८।।

इतना जूना संबंध आपने
इक झटके में तोड़ दिया।
नौ–नौ भव की इस साथिन को
बातों–बातों में छोड़ दिया।।
भले आपने छोड़ दिया अर
तोड़ दिया इक पलभर में।
पर मैं तो नहीं छोड़ सकती
जीवन धन को जीवन भर में।। २९।।

नेमिनाथ बोले – राजुल इन,
बातों में कुछ सार नहीं।
नौ–नौ भव के इन संबंधों में,
देखो तो कोई सार नहीं।।
निश्चय से देखो तो देवी,
इनका कोई आधार नहीं।
एकत्व नहीं स्वामित्व नहीं,
आधेय नहीं आधार नहीं।। ३०।।

मैंने समझाया था तुमको,
कि नहीं किसी का कोई है।
न कोइ किसी का स्वामी है,
सेवक न किसी का कोई है।।
सब हैं अपने में स्वयं पूर्ण,
न कमी किसी में कोई है।
सब ही हैं परिपूर्ण प्रभो,
स्वामी सेवक न कोई है।। ३१।।

संबंधित होना नौ भव से,
इसमें गौरव की बात नहीं।
भव का अभाव करना देवी,
ही है गौरव की बात सही।।
भव का अभाव जब करना है,
भव की चर्चा अपशगुन कही।
भव की क्यों याद दिलाती हो,
इसका कोई उपयोग नहीं।। ३२।।

यह रागभाव तोड़ो राजुल,
भव की चर्चा का अन्त करो।
मैं अधिक कहूँ क्या हे राजुल,
इस भव में भव का अन्त करो।।
भव–भव में नहीं डोलना है,
भव तो दुःखों का सागर है।
अब तक अनन्त दुःख भोगें हैं,
यह पूरी तरह उजागर है।। ३३।।

इतने में निद्रा टूट गई,
सखियाँ बोली–राजुल राजुल।
क्या हुआ हुआ क्या जो इतनी,
उद्वेलित हो राजुल राजुल।।

कुछ नहीं नहीं कुछ हे आली[1],
सुपने में नेमीश्वर आये।
बोले – राजुल तुम धैर्य धरो,
पर हम कुछ भी ना कह पाये।। ३४।।

हम रहे देखते ही उनको,
वे रहे बोलते मंगलमय।
हम तो इतने हो गये मुग्ध,
कि रहे देखते मंगलमय।।
हम दर्शन से हो गये तृप्त,
उनके दर्शन हैं मंगलमय।
हम अधिक कहें क्या हे आली,
उनके प्रवचन हैं मंगलमय।। ३५।।

दर्शन करके प्रवचन[2] सुनकर,
हम तृप्त हुये हम तृप्त हुये।
उनके बतलाये मारग से,
सन्तुष्ट हुये सन्तुष्ट हुये।।
इतना कह राजुल बेटी फिर,
इकदम विह्वल हो जाती है।
अकुलाती है घबराती है,
इकदम रोने लग जाती है।। ३६।।

(दोहा)

सुपने में चर्चा करे, राजुल अपने आप।
नेमिनाथ से विविध विध, करती हैं संलाप।। ३७।।
इस संलाप विलाप में, करने लगे प्रलाप।
विध-विध चर्चा धर्म की, करे आप से आप।। ३८।।
कभी एकदम शान्त हो, अपने में रम जाय।
कभी एकदम क्लान्त हो, वह रोने लग जाय।। ३९।।

(कुण्डलिया)

रोते-रोते वह करे, कभी तत्त्व की बात।
सबके मन को मोहती, करें मरम की बात।।
करे मरम की बात मोह लेती है मन को।
धन्य धन्य वह धन्य करे अपने जीवन को।।
इसी तरह दिन जाँय साँझ के होते-होते।
उसका जीवन जाय इसतरह रोते-रोते।। ४०।।

१. सखी २. उत्कृष्ट वचन

सोश्यल मीडिया द्वारा तत्त्वप्रचार

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की सभी गतिविधियों की जानकारी आप हमारे facebook पेज pandit todarmal smarak trust के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं।
www.facebook.com/ptst.jaipur

पण्डित टोडरमल स्मारक ट्रस्ट की सभी गतिविधियों की जानकारी एवं सत्साहित्य का ऑनलाईन ऑर्डर देने हेतु visit करें –
www.ptst.in

श्री टोडरमल स्मारक भवन में संचालित नियमित कक्षाओं एवं प्रवचनों का लाभ आप हमारे YouTube चैनल PTST के माध्यम से प्राप्त कर सकते हैं।
www.youtube.com/user/todarmalsmaraktrust

जैनधर्म को प्रारम्भ से सीखने अथवा और भी विविध विषयों को डॉ. संजीवकुमार गोधा द्वारा YouTube पर सुनने के लिये निम्न लिंक का प्रयोग करें –
www.youtube.com/c/drsanjeevgodha

... तथा राग-द्वेष-मोहरूप जो आस्रव हैं, उनका तो नाश करने की चिन्ता नहीं और बाह्य क्रिया अथवा बाह्य निमित्त मिटाने का उपाय रखता है, सो उनके मिटाने से आस्रव नहीं मिटता।
– मोक्षमार्गप्रकाशक, पृष्ठ 227

प्रकाशन तिथि : 13 अगस्त 2018

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
सह-सम्पादक : **डॉ.संजीवकुमार गोधा**, एम.ए.द्वय, नेट, एम.फिल (जैनदर्शन), पीएच.डी. एवं **पण्डित परमात्मप्रकाश भारिल्ल**
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, श्री टोडरमल स्मारक भवन, ए-४, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें –
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
E-Mail : ptstjaipur@yahoo.com